IJAER/April-May 2015/Volume-4/Issue-3/Article No-2/ 10-14 ISSN: 2278-9677

International Journal of Arts & Education Research

प्रवासी हिंदी एवं प्रवासी साहित्य के अन्तर्सम्बन्ध का मूल्यांकन

Mr. Ram Niwas
Assistant Professor
BRM College of Education
Gharaunda, Karnal

सार–
इतिहास इस बात का साक्षी है कि उन्नीसवीं सदी से लेकर अब तक जिन देशों में भी प्रवासी भारतीयों ने अपने घर बनाए वे भौतिकरूप से हर मामले में सफल रहे हैं। इनके मुख्य कारण इनकी मेहनत, लगन, निष्ठा एवं आस्था ही रहे हैं। भले ही रंगभेद के कारण उनके साथ अमानवीय व्यवहार भी हुए किंतु उन्होंने भौतिकरूप से अपने को सुखी बनाया और धनी हुए। मॉरिशस, सूरिनाम, गयाना, ट्रिनिडाड, फीजी और दक्षिण अफ्रीका में बसे प्रवासी भारतीयों को शासकों के अमानवीय व्यवहार जब असह्य हो गए तब उन्होंने सामूहिक रूप से भारतीय सरकार से हस्तक्षेप करने की प्रार्थना की, गुहार लगाई। तत्कालीन भारत सरकार ने भी अमानवीय, संवेदनहीन, राजनीतिक निर्णय लेकर सहायता देने में अपनी असमर्थता व्यक्त की। ये प्रवासी तिलमिला गए यह जानकर कि जननी ने भी अपने नैतिक–मौलिक धर्म का निर्वाह न किया। तब से हर प्रवासी भारतीय भावात्मक रूप से अपने पुरखों की जन्मभूमि से कटता रहा।

प्रस्तावना–
1950 के बाद विदेशों में जाकर बसने वाले भारतीय भिन्न श्रेणी में आते हैं। वे सुशिक्षित, पढ़े–लिखे, जागरूक होते हुए धनोपार्जन सहित अन्य कई उद्देश्यों से प्रवासी बने थे। ये अपने साथ अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए रामायण, हनुमान चालीसा या गीता नहीं वरन् अपने मौलिक अधिकारों का ज्ञान लेकर गए थे। इसके बावजूद मनोवैज्ञानिक स्तर पर इनकी हालत भी एकसा थी और आज भी है। प्रवासी भारतीयों एवं उनसे बिछड़े भारत में ही छूटे परिजनों की पीड़ा एवं दर्द को वे ही समझ सकते हैं जिनको इसका व्यक्तिगत अनुभव हुआ हो। राजेन्द्र यादव सरीखे, इस क्षेत्र में, अल्पअनुभवी या अनुभवहीन वामपंथी भारतीय आलोचकों ने प्रवासी रचनाकारों की आत्मा को बहुत कष्ट दिया है और देते ही जा रहे है। दोष ऐसे व्यक्तियों का नहीं वरन् उनकी अज्ञानता और हठ का है जिसके कारण वे वास्तविकता देख ही नहीं पाते हैं। उदाहरण के लिए शब्दयोग के अप्रैल 2008 में गोयनका जी ने उद्धृत किया है कि ''राजेन्द्र यादव ने 'हंस' के मई 2007 के अंक में जो सम्पादकीय लिखा है उसमें तो यहाँ तक लिखा है कि यह बीजेपी वाला साहित्य है, आधुनिकता से शून्य है और भारत जैसे साहित्यिक मुहावरे का पूर्णतः अभाव है। खेदजनक है कि ये मार्क्सवादी प्रवासी भारतवंशियों के इतिहास को नहीं जानते और यदि जानते हैं तो उसका उल्लेख नहीं करते।''

राजेन्द्र यादव एक अर्से से प्रवासी साहित्य को 'नास्टालजिया' का साहित्य कहते रहे हैं और उनकी धुन में धुन मिलाते ऐसे लोग भी जुड़ते रहे जिनके पास कुछ मौलिक कहने का अभाव रहा है। इन लोगों को सम्भवतः यह भी नहीं मालूम कि साहित्य का सृजन मस्तिष्क के मंथन से, चिंतन और चेतना के सम्भोग से, व्यष्टि और समष्टि के बीच विवेक से होता है। समस्या का अंत यहीं नहीं हो जाता क्योंकि कुछ चुनिंदा अवसरवादी प्रवासी रचनाकार, जिनकी तमाम कारणों से भारत के साहित्यिक गलियारों में कुछ पहचान बन गई है, अपनी रचनाओं को प्रवासी न घोषित कर तथाकथित भारत की मुख्यधारा से ही जुड़ा मानना चाहते हैं। ऐसे प्रवासी रचनाकार, भारत में पाठ्यक्रम निर्माताओं से यह विनती करते सुने गए हैं कि वे उनकी

रचनाओं को भी सम्मिलित करें। ऐसा करना कहाँ तक साहित्य या साहित्यकार के कैसे विचारों को परिलक्षित करता है, बहुत कठिन नहीं है समझ पाना। ऐसी रचनाओं का तथाकथित मुख्यधारा में होना न होने के बराबर है। गंगा की धारा गंगा ही कहलाती है। बात है भावात्मक जुड़ाव की। मॉरिशस के 'परी तालाब' में जगह–जगह से गंगाजल ला कर वहाँ के लोगों ने 'गंगा तालाब' को जन्म दिया और अब सारे संस्कार वहीं होते हैं, यह समझ कर कि गंगा ही वहाँ पहुच गई है। अधिकतर ऐसे प्रवासी दो नावों में सफर करना चाहते हुए भ्रमित हो रहे हैं। अंत क्या होगा ऐसे लोगों का, समय ही बताएगा। ऐसे रचनाकार भी अब, पिछले तीन–चार सालों में, कुछ भारतीय साहित्यकारों के स्वर में स्वर मिलाने लगे हैं कि 'प्रवासी हिंदी साहित्य' नाम की कोई चीज ही नहीं है और हिंदी में की गई प्रवासी रचनाओं को केवल हिंदी साहित्य के अन्तर्गत ही रखना चाहिए। कुछ प्रवासी रचनाकार ऐसा क्यों करने लगे हैं इसका मुख्य कारण है कि वामपंथी आलोचक प्रवासी रचनाओं को–अधकचरा, अपरिपक्व, भाषा–शैली से कमजोर, गटर तथा कचरा साहित्य करार कर चुके हैं। ऐसे प्रवासी रचनाकार अनजाने में उभरते प्रवासी रचनाकारों के भविष्य को क्षति पहुँचा रहे हैं। राजेन्द्र यादव सरीखे व्यक्ति सम्भवतः यह चाहते हैं कि सब उनका अनुकरण कर वही करें जो उन्होंने 'हंस' जैसी पवित्र पत्रिका के साथ किया। समय आ गया है जब प्रवासी रचनाकारों को ऐसे लोगों का बहिष्कार कर अपनी पहचान अपने ढंग से बनानी चाहिए।

2005 के बाद, अब स्थिति बदल रही है और कुछ सीमा तक बदल चुकी है। प्रवासी हिंदी साहित्य का स्वागत हो रहा है और उनके योगदान को विभिन्न तरीके से सराहा भी जा रहा है। उनकी रचनाओं को भारत में लोग पढ़ना चाहते हैं। विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर स्तर पर पढ़ाई हो रही। प्रवासी साहित्य और ऐसे रचनाकारों पर शोध हो रहे हैं। यही कारण है कि विभिन्न स्थापित–प्रतिष्ठित पत्रिकाओं द्वारा प्रवासी हिंदी साहित्य पर विशेषांक एवं महाविशेषांक प्रकाशित हो रहे हैं। गोयनका जी ने स्पष्ट किया है कि यह 'आरक्षण कोटे' के अंदर नहीं हो रहा है वरन् वैसे ही हो रहा है जैसे त्रिलोचन, विष्णु प्रभाकर, बच्चन, शिव मंगल सिंह 'सुमन', धनीराम 'प्रेम', तिलका माझी, प्रेमचन्द्र, निराला आदि पर निकले विशेषांक। प्रवासी हिंदी साहित्य का यह प्रारम्भिक रूप है जो अपनी जड़े जमा रहा है और शीघ्र ही तथाकथित हिंदी की मुख्यधारा में अनेकानेक प्रवासी रचनाकारों का समावेश होगा। वे अपने कृतित्व के आधार पर अधिकार सहित उसमें अपनी जगह लेंगे, न कि माँग कर। माँगने पर लोग आजकल भीख भी नहीं देते। समय बदल गया है। इस विषय पर चर्चा हम बाद में भी करेंगे।

प्रवास एवं इसके विभिन्न स्वरूपों के साथ अनेकानेक भ्रांतियाँ फैल चुकी हैं। यहाँ तक कि इसके सही एवं व्यापक अर्थ को सीमित कर अब केवल 'विदेश में रहने वाले को ही' प्रवासी समझा जाने लगा है। कुछ साहित्यकार बन्धुओं के अनुसार, गलत होते हुए भी, प्रवासी शब्द का, यह अर्थ अब रूढ़ हो गया है। दुख एवं डर दोनों है कि किस प्रकार गलत चीजों को सही मानकर लोग चलने लगते हैं। यह रस्सी को साँप समझने के बराबर है। इस शब्द से जुड़े अनेकानेक दुष्प्रयोगों के बारे में अन्यत्र विस्तार से लिखा जा चुका है। उदाहरण के लिए 'प्रवास' के स्थान पर 'अप्रवास' या 'प्रवासी' के स्थान पर 'अप्रवासी' शब्द का प्रयोग। इनका कोई अस्तित्व है ही नहीं, न शब्दकोशों में ही पाए जाते हैं। कभी कहीं किसी बड़े रचनाकार की रचना में यह गलत छप गया होगा। और तब से सबने मान लिया होगा कि यही वास्तविक शब्द है। यह 'महाजनो येन गतः स पन्थारू' की तरह है। किंतु अब यह काम अज्ञानतावश एवं लापरवाही के कारण अच्छे–अच्छे रचनाकार, सम्पादक तथा प्रकाशक आदि अबाध गति से निरंतर करते जा रहे हैं। साहित्य के साथ ऐसी चुहल दुरूखद होते हुए निंदनीय भी है।

असीमित आकाश की तरह विचारों की उड़ान एवं तत्जनित साहित्य भी अनन्त होता है। किंतु साहित्य को स्वरूप देने वाले विषयों की सीमाएँ होती हैं। इस आलेख की आधारभूत रेखा एवं सीमा का निर्धारण आवश्यक है। वास्तव में आलेख का वैचारिक जन्म 2011 की जूलाई में हुआ था जब एक मकड़जाल पर पंजाब विश्वविद्यालय की एक शोधार्थीने अपने 'प्रवासी हिंदी साहित्य' से सम्बंधित शोध के लिए कुछ सहायता

की अपेक्षा की थी। अनेकानेक लोगों ने तत्काल दिशा निर्देशन करना प्रारम्भ कर दिया। पहले चर्चा तो स्वस्थ, सार्थक एवं लाभप्रद रही किंतु शीघ्र ही इस परिचर्चा ने भी वही रूप ले लिया जो दुर्भाग्यवश ऐसे मकड़जालों पर होता है। समष्टि से सिमट कर यह व्यष्टि तक सीमित रह गई। विषय से हट कर लोग व्यक्तियों के व्यक्तित्व पर आने लगे। प्रवासी हिंदी साहित्य से जुड़े जो प्रश्न इसमें उठाए गए थे और समय–समय पर उठते रहे हैं उन्ही के समाधान का एक विनम्र प्रयास इस आलेख में किया गया है। मुख्य बिन्दु कुछ इस प्रकार हैं –

1. व्यक्ति प्रवासी होता है उसकी भाषा नहीं अतः क्या प्रवासी रचनाकारों की कृतियों को 'प्रवासी हिंदी साहित्य' के रूप में स्वीकार करना चाहिए ?
2. क्या प्रवासी हिंदी साहित्य को केवल हिंदी साहित्य कह कर हिंदी के महासागर में ही रखना चाहिए ? क्या इसको हिंदी का होते हुए एक अलग पहचान देने या मिलने की आवश्यकता नहीं है ?
3. क्या प्रवासी रचनाकार हिंदी की तथाकथित 'मुख्यधारा' से चिपक कर रहना चाहता है ? अगर हाँ तो क्यों ?
4. हिंदी के अलावा अन्य भाषाओं में भी रचनाकारों ने प्रवास में रचनाधर्मिता को कायम रखा है तो फिर उनके साहित्य को 'प्रवासी अंग्रेजी या प्रवासी फ्रेंच साहित्य' क्यों नहीं कहते ?

इन मुख्य बिन्दुओं पर चर्चा प्रारम्भ करने से पहले यह आवश्यक है कि जिस सृजनता की भूमि पर विचार किया जा रहा है उसको सही ढंग से परिभाषित कर समझ लिया जाय। भाषा–लिपि–वाङ्मय के अंतःसम्बंधों को समझते हुए उनमें जो सूक्ष्म भेद है उसको भी समझा जाय ताकि जब हम हिंदी कहते हैं तो सब एक ही बात समझें न कि कोई भाषा या कोई साहित्य। साहित्य का बीज कब और कैसे विचार के रूप में जन्म लेता है जो भाषा–लिपि के माध्यम से सामने आता है, इसको वैज्ञानिक आधार पर समझने का प्रयास किया जाना चाहिए।

विदेशी प्रवासी हिंदी साहित्य के लक्षण–

1. अचल सम्पति के मालिक दीर्घकालिक प्रवासी हिंदी रचनाकार की रचनाएँ जो विदेशों में कम से कम 10 वर्षों से रह रहे हों। साहित्य को विभिन्न देशों के परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए।
2. स्थानीय संस्कृति–संस्कारों की झलक।
3. स्थानीय रीति–रिवाजों की झलक।
4. स्थानीय परिवेश एवं वातावरण का चित्रणध्उल्लेख।
5. स्थानीय भाषा, मुहावरों एवं प्रतीकों का प्रयोग।
6. स्थानीय खान–पान एवं रहन–सहन का चित्रण।
7. स्थानीय सामाजिक मूल्यों एवं रिश्तों के समीकरणों की प्रस्तुति।
8. स्थानीय साहित्यकारों एवं साहित्य का उल्लेख।
9. देश–विदेश के जीवन–मानव मूल्यों का चित्रण।
10. परिवार, परिजन, परजन, प्रियजन, देश बिछोह पीड़ा का चित्रण।
11. देश–विदेश परिवेश जनित भिन्नताओं का चित्रण।
12. देश–विदेश मान्यताओं के टकराव का चित्रण।

इस आलेख का मुख्य उद्देश्य है कि प्रवासी हिंदी साहित्य को लेकर जो मतभेद एक बुलबुले की तरह कुछ समय से उठता रहा है उसको शांत करना। साक्ष्य, तथ्य एवं जगह–जगह के उदाहरणों का सहारा लेकर आलेख का ताना–बाना बुना गया है। भावभूमि को तैयार करने के लिए विषय वस्तु से जुड़े प्रसंगों के बारे में भी संक्षेप में वार्ता की गई है। जिन पाँच बिन्दुओं पर हम अपने आपको केन्द्रित करेंगे उनकी शुरुआत जूलाई 2011 में 'ई–कविता' मकड़जाल से प्रारम्भ हो कर 'हिंदी भारत' के माध्यम से आगे बढ़ी थी। इसमें विश्व के कई विचारकों के अवदानों की आहुति पड़ी और लगभग सबकी बातें पहले बिन्दु पर ही आधारित थीं

जिस प्रकार एक नदी सागर में समाते ही अपनी पहचान खो देती है, सम्भवतः वही होगा प्रवासी रचनाओं के साथ। ऐसी कृतियाँ अभी चीत्कार कर रही हैं कि मुझे भी देखो, पढ़ो और परखो। ध्यान रहे कि किसी चीज की पहचान बनने में समय एवं अथक परिश्रम दोनों लगता है। साहित्य के संदर्भ में दो ऐसे सामाजिक विषयों को ही ले लें जिनके बारे में, कुछ समय पहले, लोग नहीं जानते थे। वे हैं दलित एवं महिला वर्ग के लोग। जबसे दलित एवं महिला विमर्श पर खुल कर बातें अलग से शुरू हुई हैं। इनके बारे में लोग जागरूक हुए हैं। अनेकानेक सम्मेलनों के आयोजन हुए हैं, विशेषांक निकले और जनमानस की सोच बदली है। महिला रचनाकारों ने मुखर हो कर अपनी बातें स्पष्ट रूप से कही हैं जिससे साहित्य–समाज का एक नया चेहरा सामने आया है। अविश्वसनीय बातें प्रकाश में आई हैं और लोगों के ज्ञान का आकाश विस्तृत हुआ है।

किसी भी सामान्य व्यक्ति की समझ से यह परे होगा कि किसी की पहचान को जताने वाले नाम से या किसी के नाम से 'गुलामी' का अहसास कैसे हो सकता है। शारीरिक गुलामी तो थोपी जा सकती है किंतु मानसिक तो हम स्वेच्छा से अपनाते हैं जैसे भारतीय भाषाओं का तिरस्कार कर अंग्रेजी भाषा का अपनाना। आज अबाध गति से लोग अनावश्यक अंग्रेजी के शब्दों को हिंदी में डाल कर इसे प्रदूषित कर रहे हैं। ऐसे लोगों को ऐसा करने में दासता की बू नहीं आती। यह कैसी विडम्बना है। प्रवासी रचनाकारों की कृतियों के सामूहिक नाम 'प्रवासी हिंदी साहित्य' से क्यों और कैसे दासता की बू आती है? विश्व हिंदी साहित्य समाज को चाहिए कि इसे सहर्ष स्वीकार कर कदम से कदम मिला कर हिंदी के कल्याण के लिए, इसे वह वैश्विक स्वरूप प्रदान कराएँ जिसकी यह अधिकारिणी है। जैसा कि डॉ.कमल किशोर गोयनका जी (4) ने कहा है– ''अतः हिंदी के प्रवासी साहित्य की गति और विकास को अब कोई भी विरोधी शक्ति नहीं रोक सकती। वह हिंदी साहित्य की एक सशक्त धारा बन चुकी है और उसे हमें हिंदी साहित्य की प्रमुख धारा में सम्मानपूर्ण स्थान देना होगा।''

विश्व के विभिन्न कोनों में अंग्रेजी का स्वरूप बदला है और इसके के आधार पर 'भारतीय अंग्रेजी', 'अमेरिकन अंग्रेजी', 'ऑस्ट्रेलियन अंग्रेजी' आदि का नामांकन हुआ। यही हाल फ्रेंच या इटालियन भाषा के साथ भी हुआ है जो स्वाभाविक भी है। जैसा कि पहले भी लिखा गया है कि किस प्रकार विभिन्न देशों में हिंदी का स्वरूप बदला है। इन देशों से जन्मे साहित्य को परखने के लिए भाषायी–शिल्प सम्बंधी मापदंडों को भिन्न रूप में देखना होगा। इन्हें यदि द्विकेन्द्रीय लेंस के माध्यम से देखा जाय तो सम्भवतः तो हो सकता है भाषा–भाव–संवेदनाओं के साथ सही न्याय हो सके। ध्यान रहे मैं किसी रियायत की वकालत नहीं कर रहा वरन् केवल दृष्टि बदलने की ओर संकेत कर रहा हूँ। मेरे विचार से प्रवासियों की हिंदी को कोई नया नाम देने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह भाव 'प्रवासी हिंदी साहित्य' में सही तरह से प्रतिलक्षित हो जाता है।

सार–

इस पेपर में यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि क्यों प्रवासी रचनाओं को एक भिन्न वर्ग 'प्रवासी हिंदी साहित्य' में रखना ही समीचीन एवं न्यायिक होगा। यह समय की आवश्यकता के अनुरूप भी है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज द्वारा सम्पादित श्रीपाद भक्तिवेदान्त माधव महाराज, मथुरा
2. संस्कृत–वाङमय का बृहद् इतिहास
3. दशम–खण्ड, वेदान्त पुण्यश्लोक पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय
4. प्रो. संगमलाल पाण्डेय उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ
5. रसखानरू व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. माजदा असद प्रेम प्रकाशन मन्दिर, दिल्ली–6
6. संस्कृत–हिन्दी कोश वामन शिवराम आप्टे मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर
7. उत्तर प्रदेश के प्राचीनतम नगर डॉ. अशोक कुमार सिंह वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

8. महाराजा सूरजमल कुँवर नटवर सिंह राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
9. भारतीय संस्कृति कोश लीलाधर शर्मा पर्वतीय राजपाल एन्ड सन्स दिल्ली
10. ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास डा. प्रभुदयाल मीतल साहित्य वाचस्पति साहित्य संस्थान, मथुरा
11. विश्व सूक्ति कोश डा. श्याम बहादुर वर्मा प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
12. श्रीमद्भागवत गीता – गीता प्रेस गोरखपुर
13. श्रीमद्भागवत गीता सम्पादक–अशोक कौशिक हिन्दी बुक सेन्टर, दिल्ली
14. श्री भक्तमाल – भक्तमाली श्रीरामकृपालदास श्चित्रकूटीश
15. अमरकोषरू व्याख्याकार– श्री मन्ना लाल श्अभिमन्युश चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी
16. उर्दू हिन्दी शब्द कोश मुहम्मद मुस्तफा खाँ श्मद्दाहश उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ
17. जदीद उर्दू हिन्दी कोश (लुगत) विनय कुमार अवस्थी भुवन वाणी ट्रस्ट लखनऊ
18. भारतीय इतिहास कोश सच्चिदानन्द भट्टाचार्य उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ
19. ब्रज का इतिहास कृष्ण दत्त वाजपेयी
20. भारतरू अल–बिरूनी कयामउद्दीन अहमद, नूर नबी अब्बासी नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
21. प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता दामोदर धर्मानंद कोसंबी राजकमल प्रकाशन